भगवत् कृपा

THE DIVINE GRACE

महाप्रभु स्वामिनारायण प्रणीत सनातन, सचेतन और सक्रिय गुणातीतज्ञान का अनुशीलन करने वाली मासिक सत्संगपत्रिका

वर्ष–15, अंक–7 रविवार, 26 जुला' 92	सम्पादक : साधु मुकुंदजीवनदास गुरु ज्ञानजीवनदासजी जुलाई, 1992	वार्षिक चन्दा–10.00 प्रति अंक : 1.00

अमृतसेतु

[हम सब के प्यारे प्रभु प.पू. काकाजी का अमृत महोत्सव (75वीं जन्म जयंती) का महामंगलकारी वर्ष–'1993' आ रहा है.... सर्व गुणातीत स्वरूपों की छत्र-छाया में दिल्ली में 3rd. Feb. के दिन-वह अमृतपर्व मंदिर में मूर्तिप्रतिष्ठा के साथ-साथ मनायेंगे। हमारे भाग्य का तो पार नहीं कि रोम-रोम में भगवान प्रकटाये परम पवित्र पुरुष गरजू बनकर हमारे जीवन में आ गये....हमें अपनी गोद दी और उनके संग जीवन जीये !!...कैसे ऋण चुका भी पायेंगे इनका?

पू. काकाजी के निम्नलिखित दो आंशिक पत्रों से ही स्पष्ट होता है कि हमें कैसी भव्य प्राप्ति हुई है....और इनके संबंध में आने के बाद हमें क्या करना है? और इससे भी अधिक–कैसी कल्पना से परे की प्रीति होगी। हम सबसे उनकी? कितना अपना माना होगा हमें–जो ऐसा सचोट व स्पष्ट मार्गदर्शन हमारे लिए खुला रख दिया कि आज भी यदि करने लग जायें तो परम सुखी हो जायें व देह रहते हुए अक्षरधाम का सुख-शांति आनंद प्राप्त करें.....

आईये, हम सब मिलकर इस रहस्य का मनन चिंतन करके समझने का प्रयास करें। इन वाक्यों को अपने जीवन का आधार बना लें ताकि 'अमृत महोत्सव' तक में प्रत्यक्ष गुणातीत स्वरूपों हमारी सब कसर टाल कर हमारी साधना की पूर्णाहुति करा देवें....यही अंतर की आरजु.....]

❑ .....मुझे तो
पू.बापा ने अनुपम ही पसंदगी में चुना था,
सो,
सर्वांगी विकास में और सर्वोच्च ब्रह्मीस्थिति में
तकलीफें बाधारूप नहीं बनी
और
मूल रहस्यों गौण नहीं हुए–
अक्षपुरुषोत्तम उपासना
व
जीव को ब्रह्मरूप करके परब्रह्म में जोड़ने के मूल उद्देश्य में सहज स्थिति व सिद्धि पू. बापा ने दे दी.....
जिससे
सभी भूमिकाओं में अखंड शांति और आनंद रहा....

स्वीट्जरलैंड, 15-7-'77

❑ ✶ गुरु बहुत होते हैं,
परन्तु
सद्गुरु कम।
और
सच्चा सद्गुरु तो शायद ही मिले
और
मिल भी जाये तो–
उसके जोग में रहना कठिन।
यदि रहें भी, तो–
अखंड दिव्यभाव रखना कठिन।

❑ सभी में परमात्मा का दर्शन कराये वह सद्गुरु।
वह भी रखें तो–
स्वभाव टाल कर टिकना कठिन।
वह भी कर लें तो–
उसकी अनुवृत्ति में रहना कठिन।
वह भी हो जाये, तो–
उसके अभिप्राय की भक्ति करनी कठिन।
और
वह भी हो, पर–
भिन्न-भिन्न प्रकार के–भिन्न रुचि वाले मुक्तों के साथ
दिव्यभाव ही रखकर–साधुता रखकर
सरलता वर्तना–सर्वोत्तम स्थिति है।
और तब–
पूर्णता ही प्रगटे
और
Final stage सिद्ध हुई मानी जाये।
तो,
यह **एकता व समता** दृढ़ करते जाना।
दूसरा क्या कर रहा है?
वह
जरा भी नज़र में नहीं लेना।
हमें
प्रभु को याद करके
उन्हें ही सब करने देना है।

–प.पू. काकाजी महाराज
शिकागो, 12-5-'-77

✶ शब्द द्वारा परमात्मा के स्वरूप के ज्ञान का उपदेश करे वह गुरु।

आत्मा की—अर्थात् चैतन्य की रक्षा, संस्कारों की रक्षा का पवित्र दिन....रक्षा बंधन

सनातन भारतीय संस्कृति का हार्द व्रत, उत्सवों में समाया है। प्रत्येक व्रत या उत्सव के पीछे सांस्कृतिक व आध्यात्मिक रहस्य छिपा हुआ है....ऐसे कई त्यौहार हैं जो आपस में एक दूसरे के प्रति प्रेम, आत्मीयता, कर्तव्य, भावनाएँ, अधिकार आदि की अभिव्यक्ति मुँह से कुछ कहे बिना ही कर देते हैं....हृदय ही हृदय की भाषा समझ जाता है....ऐसे कुछ बंधन होते हैं जो अपने आप संबंधों को प्रगाढ़ कर देते हैं....इन्हीं त्यौहारों की परंपरा में एक अनोखा....निर्मल-निश्चल प्रेम, पवित्रता और भक्ति का त्रिवेणी संगम अर्थात् रक्षाबंधन का पवित्र दिन....अटूट आत्मीयता का पर्व.....अविभाज्य एकता का पवित्र पर्व.....

संसार में इस दिन बहन भाई की कलाई पर राखी बांधकर उससे अपनी रक्षा का वचन लेती है। समय-समय पर स्वयं भगवान ने भी स्वयं के चरित्र द्वारा इस प्रणाली को सशक्त बनाया है... इतिहास साक्षी है कि भगवान श्रीकृष्ण को उंगली पर चोट लगने से खूब निकलने पर द्रौपदी ने बिना कुछ सोच-विचारे तुरन्त साड़ी का किनारा फाड़कर उस उंगली पर बांधा....इसके फलस्वरूप दुःशासन द्वारा द्रौपदी के चीरहरण के समय, द्रौपदी के रक्षा के लिए पुकारने पर कृष्ण दौड़ते हुए पहुँचे व निरंतर वस्त्र पूरते गये...जिससे कौरव अपने इस कुकृत्य में सफल नहीं हो पाये थे। इस प्रकार एक ओर भगवान कृष्ण का सहायता के लिए पहुँचना भगवान का अपने भक्त की रक्षा कना दर्शाता है, तो दूसरी ओर चोट लगने पर द्रौपदी द्वारा कलाई पर बांधी गयी साड़ी की एक पट्टी केबदले इतना वस्त्र प्रदान कर ऋण चुकाना भी !

देह की रक्षा के लिए व्यावहारिक दृष्टि से किसी सगे संबंधी का सहारा यदि अनिवार्य है, तो फिर आत्मा की रक्षा? देह का रोग, पीड़ा आदि तो स्थूल रूप से बाहर दिखाई भी पड़ते हैं, परंतु आत्मा को लगे जन्म-मरण के रोग से हमारी रक्षा करने वाला कौन? यह प्रश्न है....

हम सब कितने भाग्यशाली कि हमें देह और आत्मा दोनों की रक्षा करने वाले प्रगट गुणातीत संतं का जोग हो गया। काल, कर्म, माया से रक्षा करने का अभय वरदान तो 'भगवान स्वामिनारायण' ने अपने आश्रितों को दिया ही है....वचनामृत में भी महाराज ने स्पष्ट कहा है कि '**मेरा आधार, मेरा आसरा, नियमों (शिक्षापत्री) और भजन जो पकड़ रखेगा उसकी मैं अखंड रक्षा करूँगा**.....' दूसरी ओर प्रगट गुणातीत स्वरूपों ने तो सरल व निर्दोषबुद्धि वाले सेवक लिए भुक्ति, मुक्ति और स्थिति मौज में दे देने के आशीर्वाद लुटाये.....

हरेक के जीवन में आज गुणातीत संत का संबंध अनिवार्य है ही। तभी हमारे स्वयं के संस्कारों की, परिवार के व बच्चों के संस्कारों की भी रक्षा हो पायेगी। सच्ची रक्षा के बंधन का 'वरदान' ऐसा असली संत ही दे सकता है।

बेशक, प्रगट गुणातीत संत की शरण में आये आश्रित का 'रक्षाबंधन' कुछ अलग प्रकार का ही है। प्रभु की अनुवृत्ति के अनुसार जीवन जीने में बाधारूप बनते सूक्ष्म इन्द्रियाँ अन्तःकरण से होते हुए युद्ध में शिष्य के विजयी होने के लिए और आध्यात्मिक रक्षा करने के लिए भगवत्स्वरूप संत इस दिन सेवकों को 'रक्षा' रूपी कवच-राखी बांधकर देते हैं। दूसरी ओर सेवक की भी निगाह ऐसे गुणातीत संत के अभिप्राय को समझकर उसमें पूर्ण सुरुचि रखने की है....इतिहास भी बताता है कि

चाहे हम कितनी भी भक्ति करते हों, परन्तु प्रभु के अभिप्राय में साथ ना दे सकें, प्रभु को जो पसंद है उसका पता चलने पर भी ना वर्तें, तो सुधन्वा जैसे भक्त भी क्यों न हो, पर प्रभु रक्षा नहीं करते....जबकि अर्जुन कैसा भी था, परंतु उसने श्रीकृष्ण के पास मन-बुद्धि से लड़ाई लेते हुए भी 'सरलता' रखी तो आंतरिक व बाहरी कुरुक्षेत्र से तो भगवान श्रीकृष्ण ने उसकी 'रक्षा' की ही, साथ ही साथ आने वाले युगों को प्रेरणा देने 'नरनारायण' के रूप में अपने साथ रख कर पुजवाया।

प्रगट के उपासकों के लिए 'रक्षाबंधन' प्रार्थना करने का दिन है तो–हे महाराज ! हे स्वामी ! हे शास्त्रीजी महाराज ! हे योगीजी महाराज ! हे काकाजी महाराज ! हे सर्व प्रत्यक्ष स्वरूपों !

इस परम मंगलकारी दिन पर हमारी धाम, धामी और मुक्तों की प्रत्यक्ष की निष्ठा में जरा भी खोखलापन ना रहे और गुरुहरि व गुरु में रंचमात्र भावफेर ना हो। अब तक यदि हुआ हो तो निकल जाये–उसके लिए अनुग्रह करना। किसीको उपदेश करने के बजाय पहले हम स्वयं के वर्तन में लायें.....भगवान और संत के वचन में कैसे भी संजोगों में अविश्वास न लायें.....संत हमारा कभी भी अहित नहीं होने देगा–यही conviction दिन प्रतिदिन दृढ़ होए। इस निष्ठा से जीने का प्रयत्न करेंगे तो सर्व गुणातीत स्वरूपों हमारे बिना कहे ही हमारी अंतर व बाहरी देशकाल से 'अखंड रक्षा' करेंगे....आईये, इस प्रकार सर्वोपरि रीत से 'रक्षाबंधन' मनायें और अखंड रक्षा के अधिकारी बनें.....

❖ ❖ ❖ ❖

अनिर्देश से

अत्यधिक आनन्द की बात है कि गुरुपूर्णिमा के महामंगलकारी दिन प.भ. मल्कानी साहब, प.भ. अरविंद त्रिवेदी (रामायण धारावाहिक के लंकेश) के सान्निध्य में प.भ. अम्बवानी साहब (Engr. In Chief, C.D.) के वरद्हस्त दिल्ली अशोकविहार नवनिर्माणधीन मंदिर के campus का 'अनिर्देश' नामाभिधान हुआ। सभी हरिभक्तों के आनन्द की सीमा न रही....

अत्यंत आश्चर्य की बात है कि पूर्ण पुरुषोत्तम श्रीजी महाराज का ही यह प्रासादिक शब्द है.... 'अनिर्देश'–अर्थात् 'अक्षरधाम' यानी भगवान का धाम–जहाँ पूर्ण पुरुषोत्तम श्रीजी महाराज स्वयं सदैव साक्षात् विराजमान रहते हैं ! भगवान के धाम का निर्देश नहीं किया जा सकता। जिसका निर्देश ही ना किया जा सके–वह अनिर्देश !

लगभग 212 साल पहले श्रीजी महाराज जब हरिभक्तों को पत्र लिखते थे तो लिखते थे– 'अनिर्देश से लिखावितं.....' तत्पश्चात् प्रभु स्वरूप प.पू. काकाजी का telegraphic address 'अनिर्देश' से होता था। फिलहाल गुरुहरि प.पू. हरिप्रसादस्वामिजी के निवास स्थान का यह नाम है। इस प्रकार इन प्रभुस्वरूपों द्वारा परम प्रासादिक हुआ यह नाम है !!

गुणातीत समाज के सभी मुक्तों को विद्यानगर से प.पू. पप्पाजी महाराज का आदेश.....

आप सभी को विदति है कि–

3 फरवरी 1993 के महामंगलकारी दिन दिल्ली मंदिर में मूर्तिप्रतिष्ठा के साथ-साथ सभी प्रत्यक्ष गुणातीत स्वरूपों की सेरेसाया में ब्रह्मस्वरूप प.पू. काकाजी महाराज का अमृत महोत्सव मनायेंगे।

प.पू. काकाजी के मुख से हमने गीता में भगवान श्रीकृष्ण द्वारा कही उक्ति 'यज्ञानां जपयज्ञोस्मि' कई बार सुनी है। जपयज्ञ प.पू. काकाजी को अत्यधिक प्रिय था....स्वयं भगवान के अखंड धारक होते हुए भी वे निरन्तर भजन करते हुए दिखाई पड़ते थे.....

तो, विद्यानगर से–**प्रगट ब्रह्मस्वरूप प.पू. पप्पाजी महाराज का आदेश है कि–**

''प.पू. काकाजी महाराज के अमृत महोत्सव के महामंगलकारी अवसर पर दिल्ली मंदिर में मूर्तिप्रतिष्ठा के समय एक भक्ति अदा करने की भावना से महापूजा में लिखित 'स्वामिनारायण' महामंत्र की आहुति दी जाये.....सो, सभी मुक्तों नियमित रूप से रोज कम से कम 275 बार 'स्वामिनारायण' महामंत्र प्रत्यक्ष स्वरूपों की स्मृति सहित लिखना प्रारम्भ करें.....

जो 275 से अधिक लिखना चाहें–अधिक लिख पायें वे अवश्य अधिक लिखें हीं.....''

सूचना

1. 'स्वामिनारायण' महामंत्र की लिखित मंत्र पोथियाँ सभी भाई 26 जनवरी 1993 तक में दिल्ली अशोकविहार मंदिर में पू. भाई स्वामिजी के नाम पर भिजवा दें.....

   बहनें अपनी मंत्र पोथियां पू. स्वाति दीदी के नाम पर अक्षरज्योति दिल्ली भिजवायें।
2. आप 'स्वामिनारायण' महामंत्र हिन्दी-अंग्रेजी-गुजराती-मराठी-गुरुलिपि या कोई भी भाषा–नीली या लाल किसी भी स्याही से लिख सकते हें।
3. मुक्तों जब अपनी 'मंत्र पोथियाँ' भेजें–तब वे अपने लिखे हुए Total मंत्रों की संख्या भी साथ में लिखकर भेजें।

ब्रह्मप्रवाह

तत्त्वनिष्ठा और स्वरूपनिष्ठा

अक्षरपुरुषोत्तम के सच्चे उपासकों में सत्संग को जैसा है वैसा पहचानने के लिए प्रगट की सर्वोपरि निष्ठा अनिवार्य गिनी जाती है। प्रगट व प्रत्यक्ष संत या साधु की सेवाभक्ति और समागम में से ही तत्त्वनिष्ठा दृढ़ होने पर स्वरूपनिष्ठा यथार्थ समझ में आती है। पांचों शास्त्रों से सर्वांग सम्पूर्ण मूलस्वरूप की निष्ठा परिपक्व करनी होती है। प्रथम व्यक्ति निष्ठा, आत्मनिष्ठा की दृढ़ता के साथ प्रगट की उपासना और आज्ञा में परिणीत होती है। सच्चा समागम व निष्कपटभाव से भगवान को ही कर्ता, सर्वोपरि और दिव्य साकार समझकर निष्काम सेवाभाव से भक्ति करने पर संघनिष्ठा पक्की होती है। उसके बाद वच. अंत्य. 38 के मुताबिक सत्संग का अनादि स्वरूप पहचाना जाता है और उसमें गति होती है। जीवात्मा शिवरूप बनकर परम शिवरूप मूल अनादि ब्रह्म में प्रवेश करके चिदाकाश में निर्गमन करता है और अखंड आनंद, सर्वोपरि सुख-शांति-प्रकाश-सामर्थ्य का अनुभव करते हुए अक्षरब्रह्म के साधर्म्य को पाता है। महाराज की अपरंपार सत्ता, गुणों, ऐश्वर्यों, प्रकाश, तेजस्विता को देखकर दासभाव से स्थिरप्रज्ञता दृढ़ करके, सच्ची स्वरूपनिष्ठा यथार्थ समझकर प्रगट की आज्ञा में ही तत्पर वर्तता है और अन्य के लिए उदाहरणरूप बनकर–प्रेरणामूर्ति बनकर, गुणातीत रीति से भजन करता है और कराता है।

व्यक्तिनिष्ठा अपने सत्संग में खूब प्रगति को पाई है और प.पू. ब्रह्मस्वरूप शास्त्रीजी महाराज के लगाव वाले सभी भक्तों को गुणातीत स्थिति का अधिकारी बनाती है। परन्तु वह कायम रखने तत्त्वनिष्ठा और जीवात्मा का प्रकृतिपुरुष व उससे पर चिदाकाश के स्वरूपों के साथ का संबंध यथार्थ पहचानना चाहिए। तो ही तत्त्वों की महालीला, महत् तत्त्व में से जो भूमिकायें प्रगट होती हैं उनमें से साम्यावस्थारूप माया में से बचाती है और मूल ब्रह्म के संगी बनाकर महाराज की सेवा में रहने का अधिकारी बनाती है। दृढ़ निष्ठा में से संघनिष्ठा होते सत्संग समग्र दिव्य लगता है। चैतन्य का ही सारा व्यापार लगता है और मूल ब्रह्म के प्रकाश से ही मुर्दे जैसे जीव सच्चिदानंद रूप में विचरण करके, आत्मनिष्ठा दृढ़ करते हैं। फलस्वरूप जीवात्मा स्वयं का स्वरूप पहचान कर, सत्संग द्वारा अंतराय टलने पर महाराज के निर्दोष, सर्व कर्तापन की व सभी के कारण रूप स्वरूप की प्रतीति करती है। फिर दिव्यभाव, अलौकिकभाव ही लगता है। जब तक सत्संग ऐसा मनाया नहीं गया तब तक वचन की कसनी में रहा नहीं जाता और आत्मबुद्धि पनपती नहीं। फिर चाहे साथ में रहें, सेवा करें, कितनी भी मालायें फेरें या सारा दिन सत्संग के कामों में धक्के भी खायें, परन्तु स्थिति नहीं हो पाती। अवगुण ही दिखाई पड़ते हैं। इसलिए सत्संग का सुख नहीं आता और सत्पुरुष के गुणों आये बिना, निर्वासनिक हुए बिना मूर्ति का सुख भी कहां से अनुभव हो पायेगा और भोग भी पायेंगे?

प्रगट साक्षात् प.पू. योगीजी महाराज ने सच्ची अक्षरपुरुषोत्तम की तत्त्वनिष्ठा की पहचान कराई है। यथार्थ रूप में तो उनके समागम से ही वह समझ में आ सकती है। जब तक परम चिंतामणि की महिमा जीवात्मा में दृढ़ नहीं हुई हो, तब तक जाग्रतता, साक्षीभाव, क्षेत्रज्ञभाव पक्का नहीं होता और सच्चिदानंद की, अक्षररूप की भावना ही पनपती नहीं, तो प्राप्त तो होगी ही कहां से ? सो

समागम से ब्रह्मरूप होकर महाराज के दिव्य स्वरूप का आनंद, सुख लेकर, दासभाव से सेवा में अखंड रहना है। वह ही आदर्श है और आखिरी मुक्तदशा की स्थिति है। वच. मध्य-63, प्र.63, मध्य-24-42-13-14-9 पर विचार करना।

हमें माया से परे के स्वरूपों साक्षात् मिले हैं। सो, जिसे पाना था, मिलना था—वह अक्षरधाम देह रहते हुए ही प्राप्त हुआ है; परन्तु चिंतामणि बालक के हाथ में है। अतः संत समागम से तत्त्वनिष्ठा व यथार्थ स्वरूपनिष्ठा दृढ़ कर लेनी, जिससे निर्गुणभाव से अखंड निर्विकल्प स्थिति में रहकर भगवान के सर्वोपरि सुख का वच. अंत्य. 29 के मुताबिक अनुभव किया जा सके, भोगा जा सके व प्राप्त हो और दूसरों को भी गुणातीत ज्ञान के रसिक पिपासु बनाकर उस दिव्यस्वरूप में जुड़ पायें। समग्र सत्संग दिव्य लगे और अखंड अलौकिकभाव रहा करे। अक्षरधाम की परमशांति का, शुभ ही संकल्पों का—साक्षात् ब्रह्म के दर्शन की प्रतीति वाला यह सुख सभी संतों की सेवा करके—स्वरूप को निर्दोष समझकर सर्वज्ञ जानकर निरन्तर भोगें और दूसरों को प्रतीति करायें व मुमुक्षुओं को इस राह पर चलाएं—यही गुरुहरिश्री को नम्र प्रार्थना।

—प.पू. काकाजी महाराज

जन, 1953

❋❋❋❋

स्वामी की बातें

211. बड़े संत के प्रति अवगुण नहीं होगा और हममें यदि कोई दोष होगा भी तो वह फिकर भगवान की है, परन्तु बड़े संत के प्रति अवगुण होगा वह तो वज्रलेप होगा।

प्र—4,87

212. आगे धोलका—अमदावाद आयेगा, उसमें कुछ देखना नहीं है और जिसे देखना है, पूजना है, सेवा करनी है वह तो तुम्हारे साथ है, सो उसी के सामने देखते रहो। परन्तु यह बात समझ में आये, वैसी नहीं है। और सब कहते हैं कि गोपालस्वामी, नित्यानंदस्वामी देह छोड़ गए, अब किस के पास जायें? परन्तु रघुवीरजी महाराज बहुत ही बड़े थे, जबकि इनके देह छोड़ने के बाद वे पहचाने गये। हमें बहुत ही लाभ हुआ है। वह महिमा ब्रह्म के कल्प तक कहें तो भी पार नहीं आये और यदि नहीं समझें तो खोट भी बहुत है, जिसका भी ब्रह्मा के कल्प तक कहें, पार नहीं आयेगा। यूँ प्रगट स्वरूप को पहचानने की बहुत ही बातें करी। प्र—4,88

213. ....महाराज को मिले हुए देह छोड़ देंगे, तब किसी मुक्त को भेजेंगे। और वह भी इसी सम्प्रदाय में ही पुनः भेजेंगे, क्योंकि ऐसा शुद्ध सम्प्रदाय और कोई नहीं है।

प्र—4,89

214. अमदावाद में बात करी कि फिलहाल महाराज प्रगट हैं, वैसे ही ज्ञान देते हैं, वैसे ही नियम में रखते हैं, वैसे ही धर्म का आचरण कराते हैं और वैसे ही उपदेश देते हैं। प्र—4,90

215. दूसरा कुछ करना नहीं है, उनके होकर उन्हें जीव सौंप देना है। यह कर लिया सो सब कुछ कर लिया और अक्षरधाम में महाराज के ऐसे उत्तर की ओर मुखारविंद करके बैठे हैं.....

प्र—4,91

216. जो लिखा वह पढ़ा नहीं तो वह लिखा हुआ भी न लिखने के बराबर है। और पढ़ा भी लेकिन उस पर ध्यान नहीं दिया तो वह पढ़ा भी न पढ़ने के बराबर है और शायद ध्यान भी दिया पर वैसा करने उस मार्ग पर यदि चलें नहीं, तो भी क्या? इसलिए रजोगुण, तमोगुण जब न हों और सत्त्वगुण की प्रवृत्ति हो तब स्थिर होकर, स्थिर मन से पढ़कर मन को टटोलना, तो हल निकलेगा। मन को टटोलने का मतलब—जो बातें सुनी-पढ़ी वह हृदय से लेनी और ऐसा होता है या नहीं यह खोज कर वैसा ही करना।

प्र—4,92

217. जैसे किसी के घर में चिंतामणि गाढ़ी हुई हो, परन्तु जब तक खोदकर उसे निकालेगा नहीं, तब तक वह गरीब होगा। ऐसा आत्मा-परमात्मा का ज्ञान है। प्र—4,93

218. जब-जब कामादि दोष परेशान करने आयें, तब-तब उसकी उपेक्षा करना चाहिए। मतलब—वे संकल्प छोड़कर दूसरी क्रियाओं में जुड़ जाना, ताकि उस संकल्प का जोर चले नहीं.....कामादि के संकल्प टालने के और भी उपाय कहे हैं, परन्तु सब उपायों के बजाय उस समय दूसरी क्रिया में लग पड़ना जिससे कि वह संकल्प टल जायें।

प्र—4,94

219. प्रथम साधन दशा में तो पूर्ण ज्ञान नहीं होता और पूरा ज्ञान जब तक ना हो, तब तक पूरा सुख भी नहीं आ सकता। उस पर दृष्टांत दिया कि—जैसे थोड़ी बारीश होने से नदी में पुराना व नया पानी इकट्ठा होने पर वह गंदा बनता है, परन्तु काफी बारिश हो तभी सारा पानी साफ व नया होगा। यूं परिपूर्ण ज्ञान होवे, तब सुख होता है।

प्र—4,95

220. .....जब तक स्वयं को पुरुष मानेंगे, तब तक स्त्री चाहिएगी और जब तक स्वयं को स्त्री मानेंगे, तब तक पुरुष चाहिएगा। वह गौलोक तक चाहिए होगा। इसलिए 'निजात्मानं ब्रह्मरूपं' यह सिद्धांत है।

प्र—4,96

❑ ❑ ❑

व्रतोत्सवसूची

1.	दि.	9.8.92	रविवार	पवित्रा एकादशी, व्रत
2.	दि.	13.8.92	गुरुवार	श्रावणी पूर्णिमा, रक्षाबंधन
3.	दि.	21.8.92	शुक्रवार	जन्माष्टमी, निर्जला व्रत
4.	दि.	24.8.92	सोमवार	एकादशी, व्रत

PUBLISHED BY SADHU MUKUNDJIVANDAS FOR YOGI DIVINE SOCIETY,
A 103, Ashok vihar-III, Swaminarayan Marg, Kakaji Lane,
Delhi-110 052. (India) Tel. : 7229327, 7249327
Printed at **Kamal Printers,** IX/5866, Gandhi Nagar, Delhi-110 031